ROOTINDEXING
JOURNAL ABSTRACTING AND INDEXING SERVICE
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
July-December 2023, Submitted in July 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

कर्मयोग, भक्ति योग एवं ज्ञान योग का विश्लेषणात्मक अध्ययन

नविता देवी, पी–एच.डी. (छात्रा), जे.जे.टी.विश्वविद्यालय
डॉ. सुषमा मौर्या, शोध निर्देशिका, जे.जे.टी.विश्वविद्यालय

शोध आलेख सारांश –

योग शब्द की उत्पत्ति 'युज्' धातु से हुई है जिसका तात्पर्य है–जोड़ना। जोड़ने के कई अर्थ हैं आत्मा को परमात्मा से जोड़ना, मन इन्द्रियों तथा शरीर को जोड़ना, शरीर की भौतिक तथा मानसिक शक्तियों का समन्वय करना, मानव को मानव से जोड़ना आदि। प्रकृति के क्रम विकास की अभिव्यक्ति मनुष्य के रूप में होती है। जड़ तत्व से प्राण और फिर प्राण से मन और फिर मन से परे विज्ञान, तत्पश्चात् पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति होती है। योग उस दिशा में मानवता को ले जाने वाला एक प्रशस्त मार्ग है। यद्यपि योग साधना दैवक्तिक है, परन्तु उसका परिणाम सार्वजनिक है; क्योंकि इसका उद्देश्य मनोमय मनुष्य की अति मानसिक या आध्यात्मिक सामाजिक स्तर तक ले जाना है।

शोधकर्ता का कहना है कि आज जब हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गये हैं, योग हमें एक बहुमूल्य आध्यात्मिक विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। यद्यपि योग का मुख्य विषय आध्यात्मिक पथ के उच्चतम शिखर पर चढ़ना है, तथापि यौगिक अभ्यासों से उनके आध्यात्मिक उद्देश्यों के अलावा हर किसी को प्रत्यक्ष एवं सुनिश्चित लाभ प्राप्त होता है।

मूल शब्द – कर्म, भक्ति एवं ज्ञान योग।

भूमिका –

कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी मानने का अर्थ है उनमें से किसी एक को भी नहीं समझना। परस्पर पूरक होने के कारण उनका क्रम से अर्थात् एक के पश्चात् दूसरे का आश्रय लेना पड़ता है। प्रथम निष्काम भाव से कर्म करने पर मन में स्थित अनेक वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं। इस प्रकार मन के निर्मल होने पर उसमें एकाग्रता और स्थिरता आती है जिससे वह ध्यान में निमग्न होकर परमार्थ तत्त्व का साक्षात् अनुभव करता है। विदेशी संस्कृति के लोग हिन्दू धर्म को समझने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं।

साधनों की विविधता और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले उपदेशों को पढ़कर उनकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। परन्तु केवल इसी कारण से हिन्दू धर्म को अवैज्ञानिक कहने में उतनी ही बड़ी और हास्यास्पद त्रुटि होगी जितनी चिकित्साशास्त्र को विज्ञान न मानने में केवल इसीलिए कि एक ही चिकित्सक एक ही दिन में विभिन्न रोगियों को विभिन्न औषधियों द्वारा उपचार बताता है।

अध्यात्म साधना करने के योग्य साधकों में दो प्रकार के लोग होते हैं क्रियाशील और मननशील। इन दोनों प्रकार के लोगों के स्वभाव में इतना अन्तर होता है कि दोनों के लिये एक ही साधना बताने का अर्थ होगा किसी एक विभाग के लोगों को निरुत्साहित करना और उनकी उपेक्षा करना।

गीता केवल हिन्दुओं के लिये ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ लिखा हुआ शास्त्र है। अतः सभी के उपयोगार्थ उनकी मानसिक एवं बौद्धिक क्षमताओं के अनुरूप दोनों ही वर्गों के लिये साधनायें बताना आवश्यक है। अतः भगवान् यहाँ स्पष्ट कहते हैं कि क्रियाशील स्वभाव के मनुष्य के लिये कर्मयोग तथा मननशील साधकों के लिये ज्ञानयोग का उपदेश किया गया है।

श्रीमद ्भागवत भक्ति शास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है, यह समस्त विद्वानों को मान्य है। इस ग्रन्थ राज का मुख्य सिद्धांत यह है कि भक्ति प्राप्त पुरूष के लिए कोई भी साधन और साध्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। यह बात भक्त प्रिय श्रीउद्धव जी के प्रति स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ही श्रीमुख से कही है –

भक्तिं लब्धजातः साधो किमन्यदवशिष्यते।

हे साधो! जिसको भक्ति की प्राप्ति हो गयी है, उसके लिए क्या अवशिष्ट रह जाता है।' साधनकाल में भी भक्तियोग स्वतंत्र होने के कारण भक्तियोगी के लिए अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती, न उससे अधिक किसी साधन से लाभ ही मिलता है।

कर्मयोग का अर्थ कर्म शब्द कृत धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है क्रिया या व्यापार। जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल समाहित होता है, वह कर्म कहलाता है। कर्म का अर्थ ईश्वर में निष्ठा रखते हुए अनासक्त भाव से कर्म करना ही कर्म योग कहलाता है।

कर्मयोग में कर्म शब्द 'कृ' धातु मनिन प्रत्यय लगाने पर कर्म शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है–क्रिया, प्रारब्ध, हलचल, व्यापार व भाग्य इत्यादि है, जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है, वही कर्म है, अर्थात् कर्म बिना भाव अनुप्राणित नहीं होता, प्रत्येक कर्म में कुछ न कुछ भाव अवश्य सन्निहित रहता है, जो कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। गीता रहस्य में कर्म का उद्भव मनुष्य के विभिन्न क्रियाओं पर निर्भर है जैसे–खाना, पीना, उठना, बैठना, यज्ञ, योग, खेती, व्यापार, इच्छा आदि यह सभी कर्म है।

श्रीमदभगवद्गीता 'योग' का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें कर्मयोग दो शब्दों में मिलकर बना है–कर्म+योग। कर्म का सामान्य अर्थ 'क्रिया या कार्य से है एवं योग का भाव जुड़ना मिलता है। इस प्रकार कर्म करते हुए अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना एवं उसका बोध करना कर्मयोग है। वैदिक ग्रन्थों के अनुसार किए जाने वाले कर्मकाण्ड, हवन, यज्ञ, दान, तप, नैमित्रिक आदि को निष्काम भाव करते हुए परमात्मतत्व को प्राप्त करना कर्मयोग है, परन्तु मनुष्य को प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज तथा तमोगुणों से रहित होकर कर्म करना चाहिए अन्यथा ये बन्धन में डालने वाले होते हैं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सत्वगुण से युक्त कर्म को निर्मल, प्रकाश करने वाला एवं विकाररहित बताया है। तथा रज एवं तम को आलस्य प्रमाद, निद्रा एवं बन्धनों में डालने वाला बताया है। अतः 'कृतं सो भुक्तम्' अर्थात् जो जिस प्रकार का कर्म करने वाला है, वह उसी अनुरूप फल की प्राप्ति करेगा। इसलिए मनुष्य को ममता, अहंत असक्ति से रहित होकर उत्कृष्ट होकर कर्म करना चाहिए, जो भवबन्धनों, पुर्नजन्म से छुटकारा प्रदान कर परमेश्वर की अनुभूति कराता है।

Scientific Indexing Services

प्राचीनकाल में भारतीय ऋषि एवं योगियों ने वेदों की अनेक ऋचाओं की रचना की, जिसमें भक्तिभावना का प्रचुर मात्रा में आविष्कार हुआ था, भक्त का भगवान के साथ जुड़ाव 'भक्तियोग' है। पूर्वकाल से आज तकलोग इससे बहुत प्रभावित है, वे इस योगशक्ति को जाग्रत करने के लिए दान, पुण्य, यज्ञ, हवन, जप, तप, पूजा–पाठ, प्रार्थना आदि क्रियाओं के द्वारा स्वास्थ्य, बुरी वृत्तियों से सुरक्षा व मानव कल्याण के लिए भगवान की अर्चना करते हैं।

भक्तियोग के अन्तर्गत भक्त अपने सभी कर्मों को प्रभु अर्पित कर मन, बुद्धि चित्त को ईश्वर में लीन करते हैं, भगवान ही उनके मुख्य निवास स्थान है, ईश्वर निमित्त किया गया कर्म शीघ्र ही सर्व सिद्धियों को प्रदान कराता है, भगवान को भी ईश्वर में लीन करते हैं, भगवान ही उनके मुख्य निवास स्थान है, ईश्वर निमित्त किया गया कर्म शीघ्र ही सर्व सिद्धियों को प्रदान कराता है, भगवान को भी ऐसे प्रभु अर्पित, दृढ़ निश्चय वाले अत्यंत प्रिय लगते हैं, यही भक्तियोग है–

श्रीकृष्ण कहते हैं कि चंचल, दृढ़, बलवान मन भक्तियोग में बाधा उत्पन्न कराता है, परन्तु यदि भक्त का भक्तियोग की शक्ति में श्रद्धा और विश्वास है, तो अनियंत्रित मन पर 'अभ्यास और वैराग्य' के द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है। महर्षि पतंजलि भी इसे ईश्वर प्राप्ति में श्रेष्ठ कहा है। इसलिए योग में श्रद्धा, संयम एवं दोषदृष्टि से रहित होकर प्रेम भाव के साथ श्रेष्ठ आचरण भक्त को उत्तम फल की प्राप्ति कराता है, ऐसा भक्त भगवान को भी अत्यंत प्रिय लगता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि 'सा प्रानुरक्ति ईश्वरे' अर्थात् ईवर में परम् अनुराग भक्ति है, जिसका मूल उत्कर्ष प्रेम है, ईश्वर प्राप्ति की यह अनन्य प्रेमभाव की अभिलाषा 'भक्तियोग' है।

ज्ञान योग : योग शास्त्रों में ज्ञानयोग को सांख्ययोग भी कहा गया है जिसमें कहा गया है कि

"जीवन्मुक्तश्चः"

अर्थात् मनुष्य जब आत्मज्ञान की प्राप्ति कर लेता है, तब उसका अहंकार शून्य एवं आत्मनिर्भर होकर वह भवसागर को पार हो जाता है, परन्तु अविवेक को आत्मा के बन्धन का मुख्य कारण माना गया है, जिसकी मुक्ति के लिए सांख्यदर्शन में कहा गया है कि–

"ऋते ज्ञानात् मुक्ति।"96

अर्थात् ज्ञान से ही मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द का भी कथन है कि 'आत्मा का साक्षात्कार सर्वोत्तम है।'

ज्ञानयोग की साधाना से ही आनन्द स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सत्यनिष्ठ, सत्य स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं। वेदान्त दर्शन में इसकी व्याख्या इस प्रकार से की गयी है, कि ब्रह्मज्ञान का पूर्ण बोध ही मोक्ष की प्राप्त कराता है, जिसकी प्राप्ति से शोक का पूर्णतः शमन होकर आनन्दात्मक अवस्था की प्राप्ति होती है–

"आनन्दात्मक ब्रह्मवातिश्च मोक्षः शोक निवृत्तिश्च।"

अर्थात् जिस प्रकार से सामान्य मनुष्य के लिए राजा का पद अत्यंत कठिन है, उसी प्रकार से जीवनमुक्त की अवस्था को प्राप्त करना असम्भव है इस ब्रम्हज्ञान की प्राप्ति के लिए प्राचीन मनीषियों ने इसका मार्ग ज्ञान योग बताया है।

सारांश –

श्रीमदभगवद्गीता में मुख्यतः तीन विचारधाराएँ–ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग की चर्चा की गयी है। यह तीनों ही मार्ग मानव को अपने परम् लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली है। इस उद्देश्य के फलस्वरूप इनका प्रत्येक कार्य में सम्मिश्रण अवश्य होना चाहिए, जिनके अभ्यास से जीवन में आनन्ददायक फल तथा सच्ची सफलता प्राप्त कर जीवन मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है, अतः मार्ग कोई भी हो, लक्ष्य एक है, गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि "सर्वधर्मान्परित्यज्य मागेकं शरणं व्रज।" अर्थात् सम्पूर्ण कर्म एवं धर्म को त्यागकर तुम मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त करके सुखी कर दूँगा। तात्पर्य गीता ज्ञान एक अलौकिक निधि है।

जिसमें मानव कल्याण तथा परमार्थ की दिशा का श्रेष्ठतम् समन्वय किया गया है। कर्मयोग की सफलता के लिए साधक को अपने जीवन मूल्यों की अच्छी पहचान आवश्यक है, उसका मन शुद्ध, शान्त, मानवता के प्रति प्रेम भाव एवं भगवान में पूर्ण निष्ठा आवश्यक है, अर्थात् कर्मयोग का सफलता के लिए भक्ति तथा ज्ञान दोनों आवश्यक है।

मानव के सर्वांगीण विकास में ज्ञान, कर्म, भक्ति ये तीनों ही अनिवार्य है। क्योंकि ज्ञान योग की साधना से अज्ञानता समाप्त होती है, कर्मयोग मनुष्य को निःस्वार्थ तथा अनासक्ति भाव से कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करता है, वहीं भक्ति योग से भावना श्रेष्ठ, शुभ होकर मन में प्रेम का निरूपण होता है।

अतः ज्ञान के बिना भक्ति अंधविश्वास के समान, कर्म रहित भक्ति निष्फल सिद्ध होगी तथा भक्ति व कर्म के बिना ज्ञान अहं भावना का रूप ले लेगा। वास्तव में इन तीनों पद्धतियों की साधना विधि अलग–अलग अवश्य प्रतीत होती है, परन्तु इन सभी की क्रिया विधि, उद्देश्य आदि में एकरूपता तथा समानता पायी जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, भारती, कथक और अध्यात्म, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
2. कथक अक्षरों की आरसी, बख्शी, ज्योति, प्रकाशक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ आकदमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 2000
3. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण, कथक प्रवेश, प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, द्वितीय संस्करण, सितम्बर, 2014
4. दाते, रोशन (बेदरकर), कथक आदि कथक, ग्रंथाली इंडियन एज्युकेशन सोसायी, प्रथम संस्करण, 4 दिसम्बर, 2010
5. चतुर्वेदी, खेमचन्द्र, योग साधना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 2007
6. सिंह, प्रो0 रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण : 2014
7. आचार्य, पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, योग और आरोग्य (साधना और सिद्धि), विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण : 2012
8. सम्पूर्णानन्द, डॉ0 योग दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण : 1965
9. जोशी, कृष्णकान्त, श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति रस का शास्त्रीय निरुपण, प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2005
10. विवेकानन्द, स्वामी, ध्यान तथा इसकी पद्धतियाँ, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर, प्रथम संस्करण : 2004